



National Journal of Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177

NJHSR 2026; 1(66): 87-90

© 2026 NJHSR

www.sanskritarticle.com

नीरज कुमार

शोधच्छात्र, योगविज्ञान विभाग,
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत-
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली -110016

उपनिषदों में योग : एक जीवन पद्धति

नीरज कुमार

DOI: <https://doi.org/10.5281/zenodo.20550970>

भारतीय ज्ञान-परम्परा में उपनिषदों का विशेष स्थान है। इनको वेदों का ज्ञानकाण्ड माना जाता है। इनमें आत्मा, ब्रह्म, मोक्ष, यौगिक क्रियाएं जैसे- तप, स्वाध्याय, आसन, प्राणायाम, मुद्रा-बन्ध, आदि के गूढ सिद्धान्तों व विधियों का प्रतिपादन मिलता है। उपनिषदों में योग का स्वरूप अत्यन्त गम्भीर और व्यापक है। यहाँ योग सिर्फ आसन, प्राणायाम तक सीमित नहीं है, बल्कि यह आत्मानुशासन, ध्यान, आत्मसाक्षात्कार के साथ-साथ आरोग्य प्राप्ति का भी मार्ग है। उपनिषदों में वर्णित योग मनुष्य को स्वास्थ्य प्रदान करने के साथ-साथ आध्यात्मिक मार्ग पर भी लेकर जाता है। यह मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन का समग्र विकास करता है। जिसमें मनुष्य की शारीरिक शुद्धि, मानसिक शुद्धि, नैतिकता तथा आध्यात्मिक उन्नति आदि शामिल है। इस दृष्टि से उपनिषदों में वर्णित योग को एक जीवन पद्धति कहा जा सकता है, जो जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सन्तुलन स्थापित करता है। उपनिषद् भारतीय दर्शनशास्त्र का दर्पण और आध्यात्मिक विज्ञान का प्राणस्वरूप है। वैदिक वाङ्मय के क्रम में आरण्यक ग्रन्थों के बाद उपनिषदों का स्थान आता है। वेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों के बाद होने से उपनिषदों को वैदिक साहित्य का महत्वपूर्ण अंग कहा गया है। उपनिषदों को वेदों का अन्त भाग होने से वेदान्त भी कहा जाता है। उपनिषद् शब्द 'उप' (समीप) 'नि' (नीचे) एवं 'सद्' (बैठना)। इन तीनों के सहयोग से बना है, जिसका अर्थ है- गुरु के समीप बैठना। अर्थात् शिष्यों का गुरु के समीप ध्यानपूर्वक उपदेश सुनने के लिए बैठना, जिससे शिष्य की अविद्या का नाश होता है तथा उसे ब्रह्मविद्या की प्राप्ति होती है। उपनिषदों की संख्या के बारे में निश्चित नहीं कहा जा सकता कि कितनी है? क्योंकि इसकी संख्या में भेद मिलता है- कहीं पर संख्या 200 बताई गई है, तो कहीं इनसे भी अधिक बताई गई है, लेकिन मुक्तिकोपनिषद् में 108 उपनिषदों को गिनाया गया है, जो प्रामाणिक है।¹ उपनिषदों पर प्राचीन भाष्य शंकराचार्य का है। इन्होंने भाष्य के लिए केवल 10 मुख्य उपनिषदों को चुना है। ये ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य एवं बृहदारण्यक उपनिषद् हैं।² इनमें योग की चर्चा कहीं-कहीं की गई है, लेकिन इसके अलावा 21 उपनिषद् ऐसे हैं, जिसमें सिर्फ योग की चर्चा की गई है। इनके संग्रह को योग उपनिषद् कहते हैं। इनमें से योगराज उपनिषद् अप्रकाशित तथा अन्य 20 उपनिषद् प्रकाशित हैं।

उपनिषदों में योग की अवधारणा

योग शब्द संस्कृत धातु 'युज्' से बना है जिसका अर्थ है जोड़ना, मिलना या एकाग्र करना। उपनिषदों में योग का तात्पर्य आत्मा और परमात्मा के मिलन से है। कठोपनिषद् में योग को परिभाषित करते हुए बताया है कि इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि की स्थिरता ही योग है। अर्थात् जब इन्द्रियाँ मन सहित स्थिर हो जाती हैं और बुद्धि भी निश्चल (चञ्चलहीन) हो जाती है, तब यही अवस्था परम अवस्था है अर्थात् योग है-

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।

बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम्॥³

इस प्रकार योग वह स्थिति है, जिसमें मनुष्य की चित्तवृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं और आत्मा अपने वास्तविक स्वरूप का अनुभव करती है। उपनिषद् कहते हैं कि यदि आपका मन, इन्द्रियाँ और शरीर

Correspondence:

नीरज कुमार

शोधच्छात्र, योगविज्ञान विभाग,
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत-
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली -110016

आपके वश में नहीं हैं, तो आप जीवन की यात्रा में सफल नहीं हो सकते। कठोपनिषद् में कहा गया है कि आत्मा रथ का स्वामी है। शरीर रथ है। बुद्धि सारथी है। मन लगाम है और इन्द्रियाँ घोड़े हैं। यदि लगाम ढीली रखेंगे, तो घोड़े रथ को गड्ढे में गिरा देंगे। इसलिए सारथी (बुद्धि) द्वारा लगाम (मन) को कसकर रखना चाहिए ताकि घोड़े (इन्द्रियाँ) सही दिशा में चलें। यह अनुशासन ही योग है।⁴ उपनिषदों में साधना एवं योग पद्धति का दृष्टिकोण रहस्यों से परिपूर्ण भण्डार है। योग की प्रत्येक पद्धति में चित्तवृत्ति के निरोध को एक अभिन्न अंग कहा गया है। धारणा, ध्यान, समाधि सभी योगविद्या में अनिवार्य रूप से सम्मिलित हैं, जिसके कारण पतञ्जलि ने किसी एक योग का नाम निश्चित न करते हुए योग के सर्वमान्य लक्षण चित्तवृत्ति निरोध को ही योग पदवाच्य कहा है।⁵ मैत्रायणी उपनिषद् में प्राण का स्थिर होना ही योग कहा है। जब प्राण, मन एवं इन्द्रियाँ एक होकर बाह्य विषयों से अनासक्त होकर इन्द्रियाँ मन में तथा मन आत्मा में लीन हो जाते हैं, तो इस अवस्था में प्राण स्थिर होता है, यही योग है।⁶ प्राण-अपान का एकीकरण, रज-रेतस का मिलन, सूर्य-चन्द्रमा का मिलन, जीवात्मा-परमात्मा का मिलन ही योग है।⁷ उपनिषदों में योग का अर्थ आध्यात्मिक रूप से भी लिया गया है, जिसके कारण योग को मोक्षप्राप्ति का साधन माना गया है। मुण्डकोपनिषद् में योग के महत्त्व को बताया है। इसके अनुसार धीरयुक्त आत्मा ब्रह्म को प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त करते हैं। वे जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त हो जाते हैं।⁸ कहते हैं कि योग के बिना आध्यात्मिक उन्नति सम्भव नहीं है, लेकिन सच तो यह है कि किसी भी प्रकार की वास्तविक उन्नति योग के बिना सम्भव नहीं है। वर्तमान में लोग शरीर को तथा भौतिक संसाधनों को प्राप्त करना ही श्रेष्ठ मानकर आसुरभाव की वृद्धि कर रहे हैं। योग से चित्त निर्मल होता है। मन के ऊपर जो कर्मवासना रूपी मल एकत्र हो रखा है, उसी के कारण कुछ नहीं हो पाता है। मन की शक्ति कुण्ठित रहती है। इस मल को योगाभ्यास द्वारा नष्ट करना सम्भव है। एक समय था जब योग का प्रचार-प्रसार सीमित था, लेकिन आज प्रचारतन्त्र की सर्वसुलभता से योग शब्द की ध्वनि सब ओर सुनाई देती है। अनेक प्रकार के योगों का वर्णन हमारे प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त होता है, लेकिन मुख्यतः चार प्रकार के योग का वर्णन किया गया है, जिसमें मन्त्रयोग, लययोग, हठयोग और राजयोग हैं।⁹ मन्त्रयोग के विषय में कहते हैं कि साधक बारह वर्ष तक मात्रा सहित मन्त्र का जप करता है, तो वह मन्त्रयोग कहा जाता है। मन्त्रयोग की उपासना अधम कोटि वाले साधक करते हैं। लययोग के विषय में कहा गया है कि यह करोड़ों प्रकार का है, इसमें ईश्वर का ध्यान चलते-फिरते, उठते-बैठते, खाते-पीते कर सकते हैं यह लय योग है। हठयोग में अष्टांग योग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि) है। जो कि वर्तमान में सर्वाधिक प्रचलित है।¹⁰ हठयोग में मुद्रा-बन्ध, षट्कर्म आदि यौगिक क्रियाएं आती हैं।

यौगिक जीवनशैली से तात्पर्य सन्तुलित दिनचर्या, जागरण काल, अभ्यंग, भोजन एवं निद्रा का अनुशासन तथा इनका शास्त्रोक्त पालन

करना ही यौगिक जीवनशैली है। यौगिक जीवनशैली का मानव जीवन पर बहुत सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। उपनिषदों में मनुष्य की दिनचर्या, आचरण, साधना, ब्रह्मज्ञान, आरोग्यता तथा आत्मविकास के मार्ग का वर्णन मिलता है। मानव जीवन को व्यवस्थित और सन्तुलित बनाने में दिनचर्या का अहम योगदान होता है। दिनचर्या का अर्थ है दिनभर किये जाने वाले नियमित कार्यों की व्यवस्थित पद्धति। मनुष्य के दैनिक जीवन के कार्यों की सुव्यवस्थित योजना को दिनचर्या कहा जाता है। जैसे- प्रातः उठना, शौच और स्नान, भोजन करना, अध्ययन करना, व्यायाम या योग करना, विश्राम करना आदि। ये सामान्य दिनचर्या है। लेकिन योगशास्त्र और आयुर्वेद में ब्रह्ममुहूर्त में उठना, भोजन तो करना है, लेकिन शुद्ध व शाकाहारी, योगाभ्यास करना और संयमित जीवन जीना आदि। जब मनुष्य अपने जीवन में एक निश्चित समय पर उठने, कार्य करने, अध्ययन करने, विश्राम आदि की आदत विकसित करता है, तो वह अधिक व्यवस्थित और सन्तुलित हो जाता है। दिनचर्या को स्वास्थ्य और सफलता का आधार माना जाता है। सन्तुलित दिनचर्या मानव के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और नैतिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। दिनचर्या का प्रभाव सबसे ज्यादा मनुष्य के स्वास्थ्य पर पड़ता है। अगर व्यक्ति नियमित एक निश्चित समय पर जागना, भोजन करना, व्यायाम करना आदि करता है, तो उसका पाचनतन्त्र, नींद अच्छी तथा शरीर में ऊर्जा बनी रहती है। अगर दिनचर्या अनियमित हो, तो अनेक रोग उत्पन्न हो सकते हैं। जैसे- मोटापा, थकान, कमजोरी, पाचन सम्बन्धित विकार आदि। दिनचर्या मानसिक स्वास्थ्य पर भी प्रभाव डालती है। नियमित दिनचर्या होने पर मन शान्त रहता है, मानसिक तनाव कम रहता है, एकाग्रता बनी रहती है, सकारात्मक सोच का विस्तार होता है। दिनचर्या व्यक्ति के चरित्र और व्यवहार को भी प्रभावित करती है। नियमित जीवन जीने वाला अनुशासित, जिम्मेदार और संयमी होता है। उपनिषदों में साधक की यौगिक जीवनशैली का अप्रत्यक्ष रूप से उल्लेख मिलता है इसलिए इनमें ब्रह्ममुहूर्त में जागरण, स्वाध्याय, तप, ब्रह्मचर्य, ध्यान, सत्याचरण जैसी दैनिक गतिविधियों का उल्लेख प्राप्त होता है। यह दिनचर्या व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण है। उपनिषदों के अनुसार साधक को प्रातः काल ब्रह्ममुहूर्त में उठना चाहिए। यह समय साधना और अध्ययन के लिए सबसे उपयुक्त माना गया है। कठोपनिषद् में भी कहा गया है कि जो मनुष्य आत्मज्ञान की खोज करता है, उसे हमेशा जाग्रत और सजग रहना चाहिए क्योंकि ब्रह्ममुहूर्त का समय मन की शुद्धि और ध्यान के लिए सर्वोत्तम माना गया है। इसलिए कहते हैं उठो, जागो और श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त करो- उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।¹¹

यौगिक जीवनशैली में आहार का बहुत महत्त्व है। पौराणिक कथन है कि **जैसा खाय अन्न वैसा होय मन** अर्थात् जैसे गुण वाला हम भोजन करते हैं हमारे मन की प्रवृत्ति भी वैसी ही हो जाती है। हम जो भी आहार ग्रहण करते हैं, वह धातु, मल, त्रिगुण एवं सम्पूर्ण शरीर पर पड़ता है। रोगों की उत्पत्ति असन्तुलित तथा अशुद्ध आहार से होती है। छान्दोग्योपनिषद् में कहा गया है कि शुद्ध आहार से अन्तःकरण की शुद्धि होती है और अन्तःकरण की शुद्धि से निश्चल स्मृति उत्पन्न होती है। मन शान्त होता है, चित्त एकाग्र हो जाता है। ऐसी स्थिति होने पर स्मृति से सब बन्धन, राग-द्वेष नष्ट हो जाता है। **आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।**¹² इसी प्रकार गीता में भी स्पष्ट

कहा है कि जो व्यक्ति संयमित भोजन करता है, संयमित आचरण करता है, अपने सभी कार्यों में सन्तुलन रखता है, जो समय पर सोना, समय पर जागता है, उसका योग सभी प्रकार के दुःखों का नाश करने वाला होता है।

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखाहा॥¹³

यौगिक आहार को मिताहार की संज्ञा दी गई है। जिसमें मित=सन्तुलित, सात्त्विक, मन को भाने वाला। आहार = भोजन अर्थात् सन्तुलित भोजन करना। त्रिशिखीब्राह्मणोपनिषद् और योगतत्त्वोपनिषद् में दस यमों में मिताहार को श्रेष्ठ माना है।¹⁴

इसी प्रकार उपनिषदों में वर्णित यम-नियम जीवन में सकारात्मक प्रभाव डालते हैं। उपनिषदों में यम-नियम के अंगों में भेद मिलता है- त्रिशिखीब्राह्मणोपनिषद् में यम-नियम के दस-दस अंग दिए हैं।¹⁵ महर्षि पतंजलि द्वारा सुव्यवस्थित अष्टांगयोग में यम-नियम के पांच-पांच अंग दिए हैं। जो क्रमशः यम- अहिंसा, सत्य, असत्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह बताये गये हैं।¹⁶ इनका आध्यात्मिक साधना में तो महत्त्व है ही, लेकिन व्यक्ति के लौकिक जीवन में भी यह अपना विशेष स्थान रखते हैं। अहिंसा का पालन करने से व्यक्ति में करुणा की वृद्धि होती है, चित्त शुद्ध होता है, सभी वैरभाव समाप्त हो जाते हैं। पतञ्जलि कहते हैं कि जो अहिंसा को सिद्ध कर लेता है, उसके सम्पर्क में आने वाले प्रत्येक जीव का वैरभाव शान्त हो जाता है।¹⁷ सत्य का पालन करने से व्यक्ति का समाज में सम्मान होता है। उसकी बातों पर सब विश्वास करते हैं। सत्य से ही राजा हरिश्चंद्र का नाम आज अमर है। सत्य को सिद्ध कर लेने पर मुख से निकले हुए सभी वचन सत्य सिद्ध होते हैं। जो व्यक्ति सत्य का पालन नहीं करते, उन्हें हर समय संकोच रहता है और मलीनता का अनुभव होता है। अस्तेय का पालन करने वाला व्यक्ति अपने जीवन को सुचारू रूप से चलाने का कोई न कोई हल निकाल लेता है, अपने कर्तव्यों का पालन करके अनेकों समस्याओं से बच जाता है। ठीक इसके विपरीत अस्तेय का पालन न करने वालों का न तो समाज में सम्मान रहता है और न ही स्वयं का चित्त शान्त रहता है। अस्तेय सिद्ध हो जाने पर व्यक्ति को संसार की सभी वस्तुएं सुलभ हो जाती हैं। ब्रह्मचर्य के पालन से शरीर, मन, बुद्धि सभी को बल प्राप्त होता है। साहस और धैर्य वृद्धि तथा कान्तियुक्त होता है। जो व्यक्ति ब्रह्मचर्य को सिद्ध कर लेता है, उसे विशेष सामर्थ्य (बल) प्राप्त होता है। अपरिग्रह का अर्थ है- आवश्यकता से अधिक संग्रह न करना। अपरिग्रह के पालन से व्यक्ति की लालच वाली वृत्ति शान्त हो जाती है। बिना अपरिग्रह पालन के व्यक्ति योग में आगे नहीं बढ़ सकता। अपरिग्रह को सिद्ध करने पर व्यक्ति भूत-भविष्य को जान लेता है।¹⁸

जिस प्रकार यम का व्यक्ति के जीवन में महत्त्वपूर्ण स्थान है, उसी प्रकार नियम का भी है। महर्षि पतंजलि नियम के भी पांच अंग बताते हैं, जो शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान हैं। बाह्य और आभ्यन्तर भेद से शौच दो प्रकार का है। बाह्य शुद्धि

शारीरिक शुद्धि होती है, जिसमें चित्त प्रसन्न होता है। आन्तरिक शुद्धि से विचारों की शुद्धि होती है। चित्त शुद्ध और सात्त्विक रहता है, जिससे व्यक्ति का सामाजिक व्यवहार अच्छा होता है। शौच के पालन से व्यक्ति की अपने शरीर के प्रति आसक्ति नहीं रहती, मोह नहीं रहता तथा एकाग्रता आती है। सन्तोष का पालन करने से व्यक्ति को अनुत्तम सुख की प्राप्ति होती है। उसे अनुभव होता है कि जो प्राप्त है, वही पर्याप्त है। कहते हैं कि जब व्यक्ति सन्तुष्ट रहता है, तब वह बड़े से बड़े धन को भी मिट्टी के समान समझता है, क्योंकि सन्तोष सुख का मूल कारण है, जो व्यक्ति असन्तुष्ट रहता है, वह किसी भी अवस्था में सुख का अनुभव नहीं कर सकता। सन्तोषी व्यक्ति कर्म करने के बाद फल प्राप्ति की इच्छा नहीं करता, जिससे किसी प्रकार का क्लेश नहीं होता। तप के अभ्यास से शरीर और इन्द्रियों की शुद्धि होती है और सभी प्रकार के द्वन्द (सुख-दुःख, भूख-प्यास, शीत-उष्ण आदि) को सहन करते हुए सम रहता है। स्वाध्याय अर्थात् स्वयं का अध्ययन, आत्म साक्षात्कार करना, प्रणवजप करना है। स्वाध्याय के सिद्ध होने पर विचारों की शुद्धि होती है। स्वाध्याय के अभ्यास से साधक अपने ईष्ट देवता का साक्षात्कार कर सकता है। ईश्वरप्रणिधान का अर्थ है अपनेआप को सब ओर से ईश्वर को समर्पित करना। ऐसा करने से साधक सभी दुःखों से छुटकारा पा लेता है। जो साधक समाधि प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें समाधि सिद्धि की प्राप्ति होती है।¹⁹

आसन सिर्फ योगाभ्यास का एक हिस्सा नहीं है, बल्कि यह सम्पूर्ण जीवनशैली को प्रभावित करता है। यह हमारे दैनिक जीवन को हर पहलू शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक को सन्तुलित करता है। आसनों के अनेक भेद बताए गए हैं- मुख्यतः आसनों का प्रयोग दो प्रकार से किया जाता है। पहला व्यायाम के रूप में शरीर को स्वस्थ और बलवान बनाने के लिए; दूसरा योगासन प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, और समाधि की सिद्धि के लिए। व्यायाम सम्बन्धित वे आसन होते हैं, जिनका प्रयोग शरीर को स्वस्थ बनाने और बलवान बनाने के लिए किया जाता है। वे ये हैं- भुजंगासन, मयूरासन, उष्ट्रासन, गोमुखासन, पश्चिमोत्तान आसन आदि। जिन आसनों का प्रयोग धारणा, ध्यान, समाधि के लिए किया जाता है। वे योगासन पद्मासन, वीरासन, भद्रासन, सिंहासन आदि हैं। शारीरिक स्वास्थ्य में आसनों का महत्त्वपूर्ण योगदान है। आसन शरीर को स्वस्थ रखने के साथ-साथ लचीला और सशक्त बनाते हैं। आसनों को करने से मांसपेशियां, पाचनतन्त्र और जोड़ मजबूत होते हैं। रक्त संचार सन्तुलित होता है, रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। कुछ आसन मानसिक सन्तुलन और शान्ति प्रदान करने वाले होते हैं। जिसमें तनाव, चिन्ता अवसाद में कमी आती है, एकाग्रता बढ़ती है। कहा भी गया है कि जब शरीर स्थिर होता है, तब मन भी स्थिर होने लगता है। यही कारण है कि ध्यान से पहले आसन का अभ्यास आवश्यक होता है। प्रतिदिन आसन का अभ्यास करने से जीवन में व्यवस्था आती है। समय प्रबन्धन की आदत विकसित होती है। इस प्रकार का सकते हैं की आसन एक सुव्यवस्थित जीवन जीने की

प्रेरणा देते हैं। तेजोबिन्दु उपनिषद् में आध्यात्मिक दृष्टि से आसन उसको समझाया है, जिसमें बैठकर सुखपूर्वक ब्रह्मा का चिन्तन किया जा सके।²⁰ महर्षि पतञ्जलि सुखपूर्वक बैठने की स्थिति को आसन कहते हैं।²¹

प्राणायाम आसन की भांति ही शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव डालता है। प्राणायाम का अर्थ है प्राणों का आयाम करना, विस्तार करना आदि अर्थात् श्वास-प्रश्वास के माध्यम से प्राण शक्ति का नियन्त्रण करना प्राणायाम है।²² प्राणायाम के अनेकों प्रकार हैं, लेकिन मुख्यतः तीन हैं। पूरक (श्वास को अन्दर लेना) कुम्भक (श्वास को अन्दर या बाहर रोक कर रखना) रेचक (श्वास को बाहर छोड़ना) मण्डलब्राह्मण उपनिषद् में पूरक, कुम्भक तथा रेचक की संख्या क्रमशः 16-64-32 कही गई है। शाण्डिल्योपनिषद् में कहा गया है कि ईडा (बायीं नासिका) से पूरक करके पिंगला (दायीं नासिका) से रेचक (श्वास को छोड़ना) करना है। ऐसा करने से शरीर की नाडि शुद्ध होती है। जिसके परिणामस्वरूप शरीर में लघुता, जठराग्निप्रदीप्त तथा नाद की अभिव्यक्ति होती है।²³ आज के समय में प्राणायाम से लोग अवगत हो चुके हैं कि प्राणायाम सिर्फ रोगी होने पर ही लाभदायक नहीं है, बल्कि यह शरीर की कार्यात्मक शैली पर सकारात्मक प्रभाव डालता है। प्राणायाम करने से श्वसन तन्त्र मजबूत होता है और फेफड़ों की क्षमता बढ़ती है। जिससे रक्तसंचार बढ़ता है, शरीर के सभी अंगों को पर्याप्त ऑक्सीजन मिलती है। प्राणायाम से थकान दूर होकर एक नई ऊर्जा का संचार होता है।

निष्कर्ष

उपनिषदों में योग केवल शारीरिक व्यायाम या ध्यान की एक सीमित प्रक्रिया नहीं है, बल्कि यह एक समग्र जीवन पद्धति के रूप में प्रतिपादित किया गया है। उपनिषदों के अनुसार योग का मुख्य उद्देश्य आत्मा और परमात्मा के एकत्व का अनुभव करना तथा मानव जीवन को सत्य, ज्ञान और आनन्द की दिशा में अग्रसर करना है। योग के माध्यम से मन, इन्द्रियों और चित्त का संयम कर व्यक्ति आन्तरिक शुद्धि तथा आत्मबोध की प्राप्ति करता है। विभिन्न उपनिषदों, विशेषकर कठोपनिषद्, श्वेताश्वतर उपनिषद्, योगतत्त्वोपनिषद् तथा योगशिखोपनिषद् में योग के नैतिक, आध्यात्मिक तथा साधनात्मक पक्षों का विस्तृत विवेचन मिलता है। इनमें योग को आत्मसंयम, वैराग्य, ध्यान, प्राणायाम और ब्रह्मज्ञान से जोड़कर जीवन को उत्कृष्ट बनाने का साधन माना गया है।

आधुनिक युग में भी उपनिषदों की योग-दृष्टि अत्यन्त प्रासंगिक है, क्योंकि यह मानसिक तनाव, असंतुलन और भौतिकतावादी प्रवृत्तियों से ग्रस्त मानव को आन्तरिक शान्ति एवं संतुलन प्रदान करती है। इस प्रकार उपनिषदों में प्रतिपादित योग एक ऐसी जीवन पद्धति है जो व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास का मार्ग प्रशस्त करती है तथा उसे आत्मोन्नति और मोक्ष की दिशा में अग्रसर करती है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गोयन्दका, हरिकृष्णदास, ईशादि नौ उपनिषद्, गीताप्रेस गोरखपुर, 2010
2. वेदालंकार, डॉ रघुवीर, उपनिषदों में योगविद्या, के०सी० पब्लिशर्स दिल्ली
3. सिद्धांतलंकार, डॉ सत्यव्रत, एकादशोपनिषद्, विजयकृष्ण लखनपाल, ग्रेटर कैलाश, नई दिल्ली
4. सरस्वती, स्वामी सत्यानन्द, मुक्ति के चार सोपान, मुंगेर, बिहार, भारत, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, संस्करण 2013.
5. वी. शास्त्री, आचार्य केशवलाल, उपनिषत्सञ्चयनम्, दिल्ली चौखम्बा प्रतिष्ठान.
6. श्रीवास्तव, प्रो० सुरेशचन्द्र, पातञ्जलयोगदर्शनम्, वाराणसी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन.
7. भारद्वाज, डॉ ईश्वर, औपनिषदिक अध्यात्म विज्ञान, क्लासिकल पब्लिकेशन क० नई दिल्ली
8. शर्मा आचार्य, पं० श्री राम, साधना से सिद्धि भाग- 2, मथुरा, अखण्ड ज्योति संस्थान, दिव्यीय संस्करण 1998.

पाद टिप्पणी

- 1 मुक्तिकोपनिषद्, २९-३०
- 2 मुक्तिकोपनिषद्, ३०
- 3 कठोपनिषद्, २/३/१०
- 4 कठोपनिषद्, १/३/३
- 5 योगदर्शन, १/२
- 6 मैत्रायणी उपनिषद्, ६/२५
- 7 योगशिखोपनिषद्, १/६८-६९
- 8 मुण्डकोपनिषद्, ३/२/५-६
- 9 योगतत्त्वोपनिषद्, १९
- 10 योगतत्त्वोपनिषद्, २१-२५
- 11 कठोपनिषद्, १/३/१४
- 12 छान्दोग्योपनिषद्, ७/२६/२
- 13 गीता, ६/१७
- 14 त्रिशिखीब्राह्मणोपनिषद्, मन्त्रभाग, ३३; योगतत्त्वोपनिषद्, २८
- 15 त्रिशिखीब्राह्मणोपनिषद्, मन्त्रभाग, ३२-३३
- 16 योगदर्शन, २/३०
- 17 योगदर्शन, २/३५
- 18 योगदर्शन, २/३५-३८
- 19 योगदर्शन, २/४०-४५
- 20 तेजोबिन्दूपनिषद्, १/२६
- 21 योगदर्शन, २/४६
- 22 योगदर्शन २/४९
- 23 शाण्डिल्योपनिषद्, १/१६